॥ श्रीहरि: ॥

696

धर्म-सम्बन्धी तात्त्विक

बाल-प्रश्नोत्तरी

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

धर्म-सम्बन्धी तात्त्विक

बाल-प्रश्नोत्तरी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

हमारे धर्म तथा धार्मिक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें लोगोंकी जानकारी घट रही है। धर्मके मूल सिद्धान्तोंका बहुत लोगोंको पता नहीं है। आजकलके स्कूल-कॉलेज तो इस ओरसे सर्वथा उदासीन हैं। परंतु जबतक धार्मिक सिद्धान्तोंकी कुछ जानकारी नहीं हो जाती तबतक धर्मका पालन तो होता ही नहीं, श्रद्धा भी नहीं रहती और अज्ञानताके कारण दूसरे जो कुछ कहते हैं उसीको मान लेना पड़ता है। प्राचीन गुरुकुलोंकी शिक्षा-पद्धतिमें यह विषय सबसे अधिक आवश्यक था और प्रत्येक विद्यार्थी इसको जानता था। वस्तुतः इसकी जानकारी विद्यार्थी अवस्थामें ही हो जानी चाहिये। इसीलिये इसमें २१ प्रश्न करके उनके उत्तर सरल भाषामें संक्षेपमें दिये गये हैं। इस पुस्तिकाके अध्ययनसे बालकोंको हमारे धर्म-सम्बन्धी तात्त्विक विषयोंको मोटे रूपमें ज्ञान हो जायगा।

इस पुस्तकके पढ़ने और समझनेमें शिशु-कक्षाकी अपेक्षा ऊपरकी श्रेणियाँ अधिक उपयुक्त होंगी।

विनीत—

प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

(धर्म-सम्बन्धी तात्त्विक)

बाल-प्रश्नोत्तरी

ईश्वर क्या है?

ईश्वर क्या है, यह तो नहीं बताया जा सकता; क्योंकि कौन कितना बड़ा विद्वान् है, यह बात उससे बड़ा विद्वान् ही ठीक-ठीक बता सकता है और ईश्वरसे बड़ा कोई है नहीं। सर्वशक्तिमान् ईश्वर पूरी तरह ठीक-ठीक न जाना जा सकता है, न उसका वर्णन ही हो सकता है; लेकिन ईश्वर है, यह बात सवा सोलह आने सच्ची है। जैसे कपड़ेको देखकर, उसका कोई बनानेवाला है, यह समझा जाता है, वैसे ही संसारका भी कोई बनानेवाला होना चाहिये, यह स्पष्ट है। संसार इतना नियमपूर्वक चलता है और फिर इतनी आश्चर्यजनक घटनाएँ इस संसारमें होती रहती हैं कि उन घटनाओंका बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी कोई कारण नहीं समझ पाते। इन सब बातोंसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध होती है।

ईश्वर कैसा है?

ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् है, भूत-भविष्य-वर्तमानकी सारी बातोंको जाननेवाला है; क्योंकि इस संसार और संसारके सब पदार्थोंको तथा मनुष्यके मन और बुद्धिको भी ईश्वरने ही बनाया है। अतः संसारमें जो कुछ है या होना सम्भव है, मन या बुद्धिमें जो कुछ आता है या आ सकता है, वह सब ईश्वरका ही रूप है। ईश्वर वह सब है और उससे भी विलक्षण है। ईश्वर ऐसा है और ऐसा नहीं है, इस प्रकारका हठ अज्ञानके कारण होता है। जैसे घड़ेके भीतर भरा पानी घड़े-जैसा और लोटेमें भरा पानी लोटे-जैसा होता है, वैसे ही जो जैसी भावना ईश्वरके सम्बन्धमें कर ले, उसके लिये ईश्वर वैसा ही है।

ईश्वर साकार है या निराकार?

ईश्वर निर्गुण-सगुण, साकार-निराकार सर्वरूप है। जैसे मिट्टीमें घड़ा नहीं है, परंतु मिट्टीसे अलग

घड़ा कोई वस्तु भी नहीं है, इसी प्रकार ईश्वरमें यह संसार नहीं है, पर संसारके पदार्थ और गुण ईश्वरसे अलग भी नहीं हैं। ईश्वरमें गुण न होते तो संसारमें गुण आते ही कहाँसे और ईश्वरमें निर्गुणता न होती तो बुद्धिमें निर्गुणकी भावना कैसे आती। इसी प्रकार आकाश, वायु आदि निराकार और पशु-पक्षी आदि साकार पदार्थ भी ईश्वरने ही बनाये हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। अतः वह एक ही साथ निराकार और साकार दोनों है। इसलिये ईश्वरके निराकार या साकारपनेके विषयमें झगड़ना नहीं चाहिये।

ईश्वर एक है या अनेक?

ईश्वर है तो एक ही; परंतु अनेक रूप हैं उसके और अनन्त शक्तियाँ हैं उसकी। जैसे एक ही मनुष्य कभी नाटकमें कुछ बनता है, कभी कुछ बनता है और इस प्रकार अनेक वेश बनानेसे वह अनेक नहीं हो जाता, वैसे ही ईश्वरके भी अनेक रूप हैं। इसलिये ब्रह्म, परमात्मा, राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गॉड, खुदा, अल्लाह या और भी जो नाम-रूप ईश्वरके कहे जाते हैं,

वे सब एक ही ईश्वरके हैं। उनमेंसे किसी एककी प्रशंसा करके दूसरेकी निन्दा करना या एकसे प्रेम करके दूसरेसे द्वेष करना—ईश्वरकी ही निन्दा तथा ईश्वरसे ही द्वेष करना है। हमारे पास एक ही मन है और उपासनाका पूरा फल मनकी एकाग्रता होनेपर ही मिलता है, इसलिये हमको भगवान्‌का जो नाम तथा रूप प्रिय लगे, हमें उसीकी आराधना करनी चाहिये। उसी एकमें ही अपने मनको पूरी तरह लगाना चाहिये। कभी एक रूपमें और कभी दूसरे रूपमें लगानेसे मन चञ्चल बना रहेगा और उपासनाका पूरा लाभ नहीं होगा। इस प्रकार भगवान्‌के एक ही नाम-रूपमें लगना तो हमारे लाभके लिये है। लेकिन भगवान्‌के दूसरे नाम और रूप भी भगवान्‌के ही हैं। उनका अपमान या तिरस्कार नहीं करना चाहिये। जैसे पिताको पुत्र सदा पिता कहता है; पर उसकी माँ उसके पिताको पति कहती है तो इसलिये वह झगड़ता नहीं कि क्यों वह भी उसके पिताको पिता नहीं कहती। इसी प्रकार जो लोग भावके भेदसे भगवान्‌को दूसरे नाम-रूपमें मानते हैं, वे भी उसी एक ही भगवान्‌के पुजारी हैं। उन सभीसे प्रेमभाव ही रखना चाहिये।

ईश्वर अवतार लेता है?

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, अतः वह अवतार ले तो सकता ही है। अग्नि सर्वव्यापक रहते हुए भी अनेक स्थानोंपर एक ही समय प्रकट होता है, ऐसे ही सर्वव्यापक ईश्वर सर्वव्यापक रहते हुए ही अवतार लेता है। जब एक योगी अपने योगबलसे अनेक रूप 'कायव्यूह' नामकी सिद्धिसे धारण कर सकता है, तब भला ईश्वर अवताररूप क्यों नहीं ले सकेगा? ईश्वर परम दयालु है, अतः जब उसके भक्त उसे आँखोंसे प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं, तब वे जिस रूपमें उसे देखना चाहते हैं, उसी रूपमें वह उनके सामने प्रकट हो जाता है। जब किसी समय भगवान्के बहुत-से सच्चे भक्त उन प्रभुके साथ पुत्र, मित्र आदिका सम्बन्ध बनाकर उनकी लीलाका आनन्द लेनेको अत्यन्त उत्सुक हो जाते हैं, तब भगवान्का अवतार होता है।

अवतार और महापुरुषमें क्या भेद है?

महापुरुष चाहे जितना महान् हो, चाहे जितनी सिद्धियाँ या अद्भुत शक्तियाँ उसमें हों; पर

उसका शरीर साधारण लोगोंके समान पञ्चभूतोंसे ही बना होता है। उसको बुढ़ापा, रोग आदि होते हैं। महापुरुषका जो सङ्ग करते हैं, उसकी सेवा करते हैं, उनका कल्याण होता है; किन्तु जो महापुरुषसे द्वेष करते हैं, उसे सताते हैं, उसके प्रति दुर्भाव रखते हैं, उनको पापका भागी होकर नरक जाना पड़ता है। लेकिन भगवान्‌का अवतार-शरीर पञ्चभूतोंसे बना नहीं होता। लोगोंके देखनेमें साधारण मनुष्य-शरीर-जैसा लगनेपर भी वह दिव्य शरीर होता है। उसमें मायाके पदार्थोंका लेश भी नहीं होता। उसमें रोग या बुढ़ापा नहीं आता। भगवान्‌के उस अवतार-शरीरकी सेवा, उसका ध्यान-पूजन करनेवालोंका तो कल्याण होता ही है, जो उससे द्वेष करते हैं, शत्रुता करते हैं, उनका भी कल्याण हो जाता है। भय, द्वेष, लोभ, काम आदि किसी भी प्रकारसे जो भगवान्‌के अवतारशरीरका चिन्तन करते हैं, उनके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। उनका कल्याण ही होता है।

मूर्ति-पूजा क्यों की जाती है?

जैसे मूर्ति धातु, पत्थर, लकड़ी आदिकी होती है, वैसे ही हमारे-आपके शरीर भी हड्डी, मांस आदि जड तत्त्वोंके ही हैं। लेकिन जीव क्योंकि

इस शरीरमें है, अतः किसीके शरीरकी सेवा-पूजा उस पुरुषकी सेवा-पूजा मानी जाती है। भगवान् सर्वव्यापक है, अतः वह मूर्तिमें भी है। इसलिये मूर्तिमें जब हम भगवद्भाव करके पूजा करते हैं, तब वह पूजा भगवान्‌की हो जाती है। जैसे किसीके शरीरको जो कि जड है, छोड़ दिया जाय तो फिर उसमें जो चेतन है, उसके सत्कारका कोई उपाय ही नहीं रहता। हमारे मनके लिये एक प्रकट आधार चाहिये चिन्तन और पूजनका। मूर्तिके द्वारा सर्वव्यापक भगवान्‌की ठीक पूजा हो पाती है और उसका ध्यान करना भी सम्भव हो जाता है। जैसे शरीरका सत्कार जडका सत्कार नहीं है, वैसे ही मूर्तिकी पूजा भी पत्थर, मिट्टी आदिकी पूजा न होकर भगवान्‌की ही पूजा है।

ईश्वर है, यह कैसे जाना जाय?

नियम यह है कि कार्य अपने कारणको जान नहीं सकता। कोई भी पुत्र यह नहीं जान सकता कि सचमुच उसका पिता कौन है। इस विषयमें उसे माताके वचनोंपर विश्वास ही करना पड़ता है। मनुष्यकी बुद्धि भगवान्‌की बनायी हुई है, अतः

बुद्धिके द्वारा तर्क-वितर्क करके ईश्वरको जानना सम्भव नहीं है। महापुरुषों तथा शास्त्रोंके वचनोंपर विश्वास करना ही एकमात्र उपाय है। जहाँ तर्ककी गति नहीं होती, वहाँ प्रयोगसे ज्ञान होता है। कोई तर्कसे न मानना चाहे कि अग्नि उष्ण है तो उसे छूकर देखना चाहिये। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंपर संदेह होनेपर जैसे ठीक विधिसे पूरी सावधानीसे प्रयोग करना आवश्यक होता है, वैसे ही जिसे पूरा निश्चय करना हो, उसे शास्त्रोंमें बतायी विधिसे सावधानीके साथ साधन करना चाहिये। पूरे विश्वमें अनादिकालसे अबतक एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसे ठीक साधन करनेपर भगवत्प्राप्ति न हुई हो। भगवान् हैं, इसका यही सबसे बड़ा प्रमाण है।

ईश्वरको न माननेसे हानि क्या है?

मनका स्वभाव है असंयमकी ओर जाना। जो लोग ईश्वरको मानते हैं, उन्हें परलोक भी मानना ही पड़ता है। झूठ, कपट, चोरी, अनाचार, हिंसा आदि पाप करनेमें उन्हें भय होता है। उनका चित्त सदा उन्हें इन दुष्कर्मोंसे रोकता है। जो लोग

ईश्वरको नहीं मानते, उनमें सत्य आदि सद्‌गुण हो तो सकते हैं, पर उन सद्‌गुणोंका कोई आधार नहीं होता। फल यह होता है कि जब प्रलोभन आता है, तब उनके सद्‌गुण टिक नहीं पाते। ईश्वरको माननेसे जो एक अद्‌भुत आत्मबल मिलता है, उससे भी वे वञ्चित रह जाते हैं। ईश्वरको न माननेसे जीवनमें अचिन्त्य ईश्वरीय सहायताओंसे भी मनुष्य वञ्चित हो जाता है और उसका परलोक तो नष्ट हो ही जाता है। ये बहुत बड़ी हानियाँ हैं।

ईश्वर मिलता कैसे है?

ईश्वर है, वह मिलता है और मुझे भी अवश्य मिल सकता है, इस प्रकारका पूरा विश्वास ईश्वरप्राप्तिके लिये सबसे पहले आवश्यक है। सत्य, सदाचार आदिका पालन करते हुए भगवान्‌के नामका अधिक-से-अधिक जप करना, भगवान्‌के मङ्गलमय रूपका ध्यान करना, भगवान्‌के अवतारचरित तथा भगवद्भक्तोंके चरितोंको पढ़ना, सुनना और सोचना, भगवान्‌का ध्यान, पूजन तथा कीर्तन करना—ये सब साधन हैं भगवान्‌को पानेके। सच्ची बात तो यह है कि भगवान् एकमात्र सच्चे प्रेमसे उत्पन्न हुई तीव्र व्याकुलता होनेपर ही मिलते हैं; किंतु

सच्चा प्रेम निर्मल चित्तमें ही उदय होता है। चित्तकी निर्मलताके लिये सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सदाचारका पूरा पालन और भगवन्नामका अधिक-से-अधिक जप आवश्यक है। जब आचरणकी शुद्धि तथा जप, पूजन, कीर्तन आदिसे चित्त शुद्ध हो जाता है, तब उसमें अपने-आप भगवत्प्रेमका उदय होता है। तभी भगवान्‌को पानेके लिये तीव्र व्याकुलता जगती है और फिर दयामय भगवान् स्वयं कृपा करके उस भाग्यवान् भक्तके सामने अपने दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूपको प्रकट कर देते हैं।

धर्म क्या है?

जैसे अग्निका धर्म है उष्णता, वैसे ही जो विशेषता जिसका धारण करती है, वह उसका धर्म है। इस दृष्टिसे धर्म दो प्रकारका है—एक मनुष्य-धर्म या मानव-कर्तव्य और दूसरा जाति तथा वर्णधर्म। सत्य, अहिंसा, शौच, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, मनःसंयम, क्षमा, तप, उदारता, स्वाध्याय, सेवा आदि मनुष्य-धर्म हैं। जो इनका पालन नहीं करता, वह तो 'मनुष्य' कहलाने योग्य ही नहीं है। इनके अतिरिक्त अपनी

जाति, अपने समाज, अपने वर्णाश्रमका जो धर्म शास्त्रसे तथा परम्परासे माना जाता हो, वह पालन करनेयोग्य है। मनुष्य पहले मनुष्य है और पीछे किसी जाति या वर्णका है। इसलिये मनुष्य-धर्म तो सबको पालन करना ही चाहिये। यदि किसी जाति या समाजमें परम्परासे मनुष्य-धर्मके विपरीत कोई बात हो—जैसे चोरी करना, हिंसा करना आदि तो वह छोड़ देना चाहिये। मनुष्य-धर्मका पालन करते हुए जैसे ब्राह्मणोंका कर्तव्य यज्ञ कराना, दान लेना तथा देना आदि है, क्षत्रियका कर्तव्य दुःखियोंकी रक्षा करना है, वैश्योंका कर्तव्य व्यापार आदि है। ब्रह्मचारीका कर्तव्य गुरुसेवा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनोंका कर्तव्य संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, वेदाध्ययन, श्राद्ध, हवन, देवपूजन आदि है, इन सबका पालन करना चाहिये।

बालकोंका विशेष धर्म क्या है?

बालकोंका विशेष धर्म है अध्ययन करना, गुरुजनोंका आदर करना और उनकी आज्ञा मानना, ब्रह्मचर्यका पालन करना तथा सात्त्विक भोजन, सादी वेश-भूषा, पवित्र अध्ययन, उत्तम सङ्गमें ही

अपनेको सीमित रखना। बालकोंको किसी भी आन्दोलनमें पड़कर अध्ययनमें बाधा नहीं देनी चाहिये। सिनेमा देखना, भड़कीला वेश रखना, चटपटा भोजन, गंदी पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिका पढ़ना, चाय-तम्बाकू आदि नशीले पदार्थोंका सेवन, अश्लील हास-परिहास तथा उच्छृङ्खल लोगोंका सङ्ग बालकोंको एकदम छोड़ देना चाहिये। पूरा जीवन बाल्यकालपर ही निर्भर है। संयम, सदाचार तथा ब्रह्मचर्यका पालन करके शरीर और मनको जो स्वस्थ बनाये रखेगा, उसीका जीवन सफल और सुखी होगा। जो कुमारावस्थामें भोजन, रहन-सहन, सङ्ग तथा आचारके विषयमें ध्यान नहीं देता, उसका शरीर प्रायः रोगी हो जाता है और मनमें ऐसे कुसंस्कार जम जाते हैं कि वे जीवनभर पुरुषको अशान्त बनाये रहते हैं।

धर्मोंके कारण लड़ाई-झगड़े क्यों होते हैं?

धर्मोंके कारण लड़ाई-झगड़े होते हैं, यह बात ही झूठी है। लड़ाई-झगड़े स्वार्थके कारण होते हैं। स्वार्थी लोग अपने स्वार्थको सिद्ध करनेके

लिये झगड़े कराते हैं। जहाँ धर्मका नाम लेकर लड़नेमें उनका स्वार्थ होता है, वहाँ वे धर्मका नाम लेते हैं; जहाँ राजनीतिके सिद्धान्तोंका नाम लेनेसे उनका काम बनता है, वहाँ उनका नाम लेते हैं। जिन देशोंमें एक ही धर्म है, वहाँ भी लड़ाई-झगड़े होते हैं और बार-बार होते हैं, खूब भयंकर होते हैं। वहाँ लड़ाईके लिये कोई और बहाना स्वार्थी लोग बना लेते हैं। जो लोग लड़ते-झगड़ते हैं, वे धर्मका नाम चाहे जितना लें, पर वे धार्मिक नहीं होते। धर्मको मानने और पालन करनेवाला कभी अन्यायपूर्ण अत्याचार कर ही नहीं सकता। जो इस लोक और परलोक दोनोंमें मनुष्यका कल्याण करे, उसे धर्म कहते हैं। धर्मकी शिक्षा ही यह है कि मनुष्य अपना ही स्वार्थ न देखे। वह दूसरोंका हित करे, दूसरोंकी सेवा करे और अपने कष्टको सहे, अपने अपराधियोंको क्षमा करे। संसारमें लड़ाइयाँ न हों, लोग झगड़ें नहीं, ऐसा स्वार्थका त्याग करनेपर ही हो सकता है। धर्म मनुष्यको स्वार्थ-त्याग सिखलाता है। शान्तिका उपाय ही एकमात्र यह है कि लोग सच्चे धार्मिक बनें।

कौन-सा धर्म सबसे श्रेष्ठ है?

कोई धर्म श्रेष्ठ है और दूसरे धर्म उससे हीन हैं, यह बात ही झूठी है। मनुष्य-धर्म जो सत्य, दया, अहिंसा आदि हैं, वे तो सभी मनुष्योंके लिये समानरूपसे पालन करनेयोग्य हैं। सभी धर्म उनको महत्त्व देते हैं। इन मानव-धर्मोंके अतिरिक्त जो बातें धर्मोंमें होती हैं, वे देश तथा समाजके भेदसे आचरणके सम्बन्धकी हैं। इनमें जो जिस देश तथा समाजमें उत्पन्न हुआ है, उसके लिये उसी देश तथा समाजका धर्म श्रेष्ठ है। दूसरेके धर्मकी निन्दा करके अपने धर्मकी प्रशंसा करना अज्ञान है। एक धर्मके व्यक्तिको भय या लोभसे दूसरे धर्ममें दीक्षित करनेका प्रयत्न भी स्वार्थके कारण ही होता है। सभी सच्चे धर्मोंका लक्ष्य है—भगवान्‌की प्राप्ति और संसारमें सदाचारपूर्ण जीवन बिताना। ऐसे सभी धर्म अपने-अपने स्थानपर ठीक हैं और श्रेष्ठ हैं।

नास्तिक किसे कहते हैं?

जो परलोकको न माने अर्थात् मरनेके पश्चात् शरीरसे भिन्न कोई तत्त्व बच रहता है और उसे

जीवित दशामें किये पाप-पुण्यका फल कभी-न-कभी भोगना पड़ता है, यह बात जो स्वीकार न करे, वह नास्तिक है। किसीके मानने-न-माननेसे सत्यमें अन्तर तो पड़ता नहीं, अतः नास्तिकके न माननेसे परलोक नहीं रहेगा, यह तो होनेसे रहा। जो परलोक नहीं मानता, उसके मनमें पाप-पुण्यका कोई भय नहीं रहता। अतः वह चाहे जितना संयमी, सत्यवादी, सदाचारी हो; उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। उसकी स्वार्थवृत्ति किसी भी समय उसे विचलित कर सकती है और उस समय बड़े-से-बड़ा पाप वह बिना हिचके कर डालेगा। अपने पापोंका फल तो मरनेके पीछे उसे भी भोगना ही पड़ेगा। नास्तिकता आती है स्वाधीनताका लोभ देकर। धर्म और ईश्वरके बन्धनसे छूटनेका ऐसे लोग गर्व करते हैं। लेकिन इसका फल यह होता है कि वे अपने मन तथा इन्द्रियोंके पूरे दास हो जाते हैं। उच्छृङ्खल होकर प्रायः असंयम करते हैं और फिर उसका फल रोग तथा अशान्ति विवश होकर उन्हें भोगना पड़ता है। लाख सिर पटकनेपर भी वे रोग तथा अशान्ति भोगनेमें स्वतन्त्र नहीं

हो सकते। ऐसे ही मरनेपर यमराजके दूतोंके फंदे और डंडे भी उनकी स्वाधीनताकी परवा नहीं करते। सच्ची स्वतन्त्रता है—धर्म और ईश्वरको मानकर मन एवं इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लेना। मन तथा इन्द्रियोंका दास होना स्वाधीनता नहीं है। संयम, सत्य, सदाचार परलोक तथा भगवान्‌को माननेपर ही टिक सकते हैं, यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये।

परलोक क्या है?

परलोकके सम्बन्धमें अलग-अलग धर्मोंकी अलग-अलग धारणा है। इस दीखनेवाले देहके भीतर देहसे भिन्न कोई चेतन-तत्त्व है। स्वप्नकी दशामें जब शरीर चुपचाप पड़ा रहता है, उसीके सहारे मनुष्य नाना प्रकारके दृश्य देखता है। मृत्युके पश्चात् भी वह तत्त्व बचा रहता है। शरीरके नष्ट होनेसे वह नष्ट नहीं होता है। जीवित दशामें जो कुछ अच्छे-बुरे कर्म व्यक्तिने किये हैं, मृत्युके पश्चात् उसे उनका फल भोगना पड़ता है। यह फल भोगनेकी व्यवस्था जहाँ जिस प्रकार होती है, उसीको परलोक कहा जाता है।

पुनर्जन्म कैसे होता है?

मनुष्य-जन्म ही कर्म करनेवाला जन्म है। इस मनुष्य-जन्ममें जो कर्म किये जाते हैं, उनका ही फल भोगनेके लिये देवता-पितर, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, वृक्ष-बेल आदिका जन्म जीव लेता है। इसलिये दूसरे किसी जीवको अपने कर्मका कोई पाप या पुण्य नहीं होता। उसे कर्मका कोई फल पीछे (दूसरे जन्ममें) नहीं भोगना पड़ता। मनुष्य एक क्षणमें ऐसा महान् पुण्य या इतना भारी पाप कर सकता है कि उसका फल भोगनेके लिये उसे लाखों जन्म लेने पड़ें। इसलिये जितने अच्छे-बुरे कर्म मनुष्य करता है, उन कर्मोंके संस्कार उसके चित्तमें एकत्र होते जाते हैं। जन्म-जन्मके जो संस्कार चित्तमें इकट्ठे हैं, उन्हींको 'संचित' कहते हैं। जो नवीन कर्म मनुष्य करता है, उसको 'क्रियमाण' कहा जाता है और वह भी संचितमें जाकर मिल जाता है। केवल बहुत बड़े पुण्य-कर्म या बहुत बड़े पाप-कर्म तथा विधिपूर्वक किये गये सकाम पूजन, यज्ञ, अनुष्ठान आदिके फलस्वरूप नवीन

प्रारब्ध बनकर तुरंत फल देते हैं। शेष सब कर्मोंके फल अन्य जन्मोंमें भोगनेके लिये संचितमें एकत्र होते रहते हैं। जब मनुष्यके मरनेका समय आता है, तब उसकी जो अन्तिम इच्छा होती है, वह उसे दूसरे जन्ममें तुरंत भोगनेको मिलती है। लेकिन एक इच्छाका भोग कई प्रकारसे सम्भव है। जैसे कोई मिठाई खाना चाहे तो दूसरे जन्ममें हलवाई, चींटी, मक्खी या अन्य जीव हो सकता है। अन्तिम इच्छा पूरी हो जाय, इसे प्रधानता देकर उसके संचितमेंसे कुछ कर्मोंका समूह पृथक् होता है, जिससे उसे जन्म मिल सके। इसे पृथक् हुए कर्मके समूहका नाम 'प्रारब्ध' है। उस समय यह प्रारब्ध एक ही नहीं बनता। एकके बाद दूसरे प्रारब्ध बनते जाते हैं जंजीरकी कड़ियोंकी भाँति। यह प्रारब्धोंकी जंजीर कितनी लंबी या छोटी होगी, यह उस जीवके संचित कर्मोंपर निर्भर है। यह जंजीर वहाँ समाप्त होती है, जहाँ मनुष्य-जन्म मिलने योग्य 'प्रारब्ध' बन जाय। भगवान्की दया यहाँ ही स्पष्ट होती है। जितनी छोटी प्रारब्धोंकी जंजीर बन सके, जितनी जल्दी जीव मनुष्यका जन्म पा सके, ऐसी

व्यवस्था भगवान् करते हैं। अब जीव उन प्रारब्धोंके अनुसार जन्म लेता है। एक प्रारब्धके पूरे सुख-दुःख भोगकर वह शरीर छोड़ देता है और फिर दूसरे प्रारब्धके अनुसार जन्म लेता है। इस प्रकार एकके बाद दूसरा जन्म लेते हुए अन्तमें वह मनुष्यका जन्म पाता है। मनुष्य-जन्ममें उसे माता-पिता, देश-जाति, कुल-धर्म, सुख-दुःख, यश-अयश आदि प्रारब्धके अनुसार मिलते हैं; किंतु वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र होता है तथा उसके पास अच्छे-बुरेकी पहचान करनेके लिये 'विवेक' होता है। यदि वह यहाँ अच्छे कर्म करे तो मरनेपर अच्छी गति पायेगा। बुरे कर्म करनेपर उसे नरकादिमें जाना होगा। यदि भगवान्‌का भजन करके भगवत्प्राप्ति कर ले तो फिर वह जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिये छूट जायगा।

ये स्वर्ग-नरक क्या हैं?

परलोक और पुनर्जन्मको स्वीकार कर लेनेपर स्वर्ग-नरक तथा इन लोकोंके निवासियोंकी बात समझना कठिन नहीं है। संसारमें जितने भी प्राणधारी हैं, वे एक सीमातक ही सुख या दुःख

भोग सकते हैं। सीमासे अधिक सुख सहसा मिलनेपर भी प्राणी मर जाता है। फिर इन्द्रियोंके द्वारा सुखका ग्रहण भी थोड़ा ही होता है। भोजनका स्वाद तभीतक लिया जा सकता है, जबतक पेट न भर जाय। बराबर स्वादके पीछे पड़े तो शरीर रोगी हो जायगा और भोजन ही छोड़ना पड़ेगा। यही बात सभी सुखोंकी है। इसी प्रकार सीमासे दुःख अधिक हो जाय तो प्राणी मूर्च्छित हो जाता है और मर भी जाता है। जिस जीवके कर्म ऐसे हैं कि उसे बहुत अधिक सुख या बहुत अधिक दुःख मिलना चाहिये, उसे स्वर्ग या नरक जाना पड़ता है। स्वर्गमें 'भोगदेह' प्राप्त होता है। इस देहमें सीमातीत सुख भोगनेकी क्षमता होती है। ऐसे ही नरकमें 'यातना-देह' मिलता है। यह देह ऐसा होता है कि टुकड़े-टुकड़े काटनेपर भी फिर स्वयं एक बन जाता है। अग्निमें जलाने या खौलते तेलमें पकानेपर भी मरता नहीं। सीमातीत कष्ट भोग सकता है यह देह। इस प्रकार जब जीवके पुण्य या पाप इतने रह जाते हैं कि उनका फल सुख या दुःख किसी सांसारिक शरीरमें भोगा जा सके, तब वह

पृथ्वीपर अपने कर्मोंके अनुसार कोई जन्म पाता है। पृथ्वीके सारे शरीर सुख या दुःख भोगनेके माध्यमिक साधन हैं और यहाँका जीवन सुख-दुःखसे मिला हुआ है। केवल सुख या केवल दुःख यहाँ कोई नहीं भोगता। सुखकी अधिकताका भोग स्वर्गमें और दुःखकी अधिकताका भोग नरकमें होता है।

देवता तथा प्रेत क्या सचमुच हैं?

बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जो केवल तर्कसे नहीं जानी जा सकतीं और इन्द्रियों तथा यन्त्रोंसे प्रमाणित भी नहीं होतीं। लेकिन देवताओं, प्रेतों तथा अन्य अलक्ष्य योनिके प्राणियोंके सम्बन्धमें इतनी घटनाएँ संसारमें होती रहती हैं कि जो सचाई जानना चाहेगा, उन्हें इनकी सत्ता तो माननी ही पड़ेगी। जैसे स्वर्ग और नरक इस पृथ्वीसे भिन्न लोक हैं और वहाँ पृथ्वीपर दीखनेवाले शरीरोंसे सर्वथा भिन्न अद्भुत देहोंमें जीवको रहना पड़ता है, वैसे ही पृथ्वीसे भिन्न अन्य लोक भी हैं। उन लोकोंमें भी अद्भुत देहके प्राणी रहते हैं। जैसे देवता स्वर्गमें रहते हैं और उनके साथ वहाँ

उपदेवजातिके गन्धर्वादि भी स्वर्गके एक विशेष स्तरमें रहते हैं। प्रेत आदि अन्तरिक्षमें रहते हैं। हमलोगोंके शरीरमें मिट्टीकी प्रधानता है। पृथ्वीके प्राणियोंके देह मिट्टीकी प्रधानता होनेसे स्थूल हैं और सदा प्रत्यक्ष रहते हैं। देवताओंका शरीर अग्निप्रधान और प्रेतोंका वायुतत्त्व-प्रधान होता है। इसीसे ये अलक्ष्य रहते हैं। जैसे अग्नि कभी बिजली आदिके रूपमें चमककर दीख जाती है, जैसे भाप बादल बननेपर दीखने लगती है, वैसे ही देवता या प्रेत अपनी इच्छासे अपने शरीरको घना करके मनुष्योंके सामने प्रकट कर सकते हैं। ये अलक्ष्य प्राणी संसारी प्राणियोंको सुख या दुःख दे सकते हैं, यह बात भी ठीक है; किंतु हैं ये भी जीव ही, अतः इनकी शक्ति भी सबकी एक-सी और असीम नहीं है। जैसे हमलोग देश, काल, परिस्थिति और शक्तिके अनुसार ही किसी काममें सफल या असफल होते हैं, वैसे ही ये भी सफल या असफल होते हैं। ये सबको न तो कष्ट देनेमें समर्थ हैं और न सबकी सभी इच्छाएँ पूरी करनेकी इनमें शक्ति है। अतएव इनसे डरनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

यहीं यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि आजकल धूर्त लोगोंने स्वार्थवश देवताओं तथा प्रेतोंके नामपर दम्भ बहुत अधिक फैला रखा है। देवसिद्धि या प्रेतबाधा तथा प्रेतविद्याकी जितनी बातें सुनी जाती हैं, उनमें सौमें एक-आध ही सच होती है। इसलिये आजकल ऐसी बातोंको सत्य मानकर किसीके द्वारा ठगे जानेका पूरा ही भय है। किसीको भी इन बातोंके फेरमें नहीं पड़ना चाहिये। भगवान्का भजन ही निर्दोष एवं निर्विघ्न है। भगवान् सर्वसमर्थ परम दयालु हैं। वे अपने भक्तकी सभी अभिलाषा पूर्ण करते हैं और जो भगवान्का भजन करता है, भूत-प्रेतादि किसीमें साहस नहीं कि उसकी ओर देख भी सके।

श्राद्धका क्या तात्पर्य है?

'जीव अपने कर्मोंका फल भोगता है, मरनेके पश्चात् वह फिर जन्म ले लेता है, उसके लिये श्राद्ध करनेसे क्या लाभ? श्राद्धके पदार्थ यहीं रह जाते हैं या ब्राह्मणके पेटमें जाते हैं, परलोकगत जीवको उनसे क्या मिला?' आदि प्रश्न बातको बिना सोचे किये जाते हैं। संसारमें हम सबका जीवन ऐसा

है कि एककी क्रियाका दूसरेपर कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता ही है। घरमें एक व्यक्ति भगवान्का भजन करे तो उससे थोड़ी-बहुत शान्ति सभीको मिलती है। एककी कमाईसे दूसरोंका भी काम चलता है। इसी प्रकार कर्ममें भी सम्बन्ध तथा आसक्तिके कारण फलका भाग प्राप्त होता है। पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदि परस्पर एक-दूसरेके कर्मोंके कुछ-न-कुछ फलभागी होते हैं। इसीसे जो मृत पुरुषकी सम्पत्तिके अधिकारी हैं, उनके सम्बन्धी हैं, उनके लिये उसका श्राद्ध करना कर्तव्य है। जीव इस मनुष्य-शरीरको छोड़नेके बाद तुरंत स्थूल देहमें जन्म ले लेता हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। उसे स्वर्ग, नरक, पितृलोक, प्रेतयोनि आदिमें सहस्रों वर्ष भी रहना पड़ सकता है। इन योनियोंमें रहते समय यदि उसके सम्बन्धी उसके लिये श्राद्ध करते हैं तो उसके फलस्वरूप उसे प्रत्यक्ष तृप्ति होती है, यदि उसने पृथ्वीपर कहीं जन्म ले लिया है, तो भी श्राद्धके फलसे उसे अनजानमें ही तृप्ति होती है। हम नहीं जानते कि हमारे पूर्वजोंने कब, कहाँ जन्म ग्रहण किया अथवा वे अभी पितृलोकादिमें हैं, उन्होंने जन्म ले लिया हो तो भी श्राद्धके फलसे उन्हें तृप्ति तो होगी ही। अतः श्राद्ध तो करना ही चाहिये। श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति कैसे होती

है, यह बात आप अपनी तृप्तिसे ही समझ लें। हम-आप जो पदार्थ सेवन करते हैं, उन पदार्थोंका सब अंश हमारे इस स्थूल देहमें ही चला जाता है। वह इस स्थूल देहको ही पुष्ट करता है। हमको—हमारे चित्तको केवल तृप्ति मिलती है। जो महात्मा अपने स्थूल देहमें आसक्ति तथा ममता नहीं रखते, उन्हें कुछ भी खिला दीजिये, उन्हें इससे कोई तृप्ति नहीं मिलती। इसके साथ यह बात भी है कि हमें आपको कोई कुछ स्थूल पदार्थ दिये बिना उस पदार्थके पानेका संतोष नहीं दे सकता। मिठाई खाये बिना मिठाई खानेकी तृप्ति नहीं होगी। इससे यह नियम निकला कि जिसका जिस स्थूल देहमें ममत्व है, उसे उस स्थूल देहके द्वारा तुष्टि दी जा सकती है। स्थूल देहमें ही स्थूल पदार्थ रह जाते हैं, प्राणीको केवल तुष्टि मिलती है। परलोकगत प्राणीके पास स्थूल देह नहीं है, अतः स्थूल देहको पुष्ट करनेवाले तत्त्व उसे चाहिये ही नहीं। उसे तो स्थूल पदार्थसे मिलनेवाली तुष्टि चाहिये। मन्त्रोंकी शक्तिसे निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें परलोकगत प्राणी कुछ देरके लिये ममत्व कर पाता है, इससे ब्राह्मणको खिलाये पदार्थोंसे उस ब्राह्मणकी तुष्टिके साथ पितरकी तुष्टि भी होती है। यह वैसी ही

तुष्टि है, जैसी हमें आपको पदार्थोंके भोजनसे मिलती है। पदार्थ तो हमारे आपके भी इस नश्वर देहमें ही रह जाते हैं, जीवमें उनका कोई अंश नहीं जाता। इसी प्रकार वे ब्राह्मणके देहको पुष्ट करते हैं, इसमें तो कोई असंगति है नहीं।

पाप करनेवाले सुखी और कर्तव्यनिष्ठ दुःखी क्यों देखे जाते हैं?

'भगवान्‌की आराधना, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण तथा कर्तव्यका सावधानीसे पालन करनेवाले आजकल प्रायः दरिद्र और दुःखी देखे जाते हैं और जो लोग झूठ, छल आदि नाना प्रकारके पाप करते हैं, संयम-सदाचारके एक भी नियमका पालन करते नहीं दीखते, वे धनवान्, स्वस्थ और सुखी हैं। ऐसा क्यों होता है?' इस प्रकारकी शङ्का स्वाभाविक है, लेकिन देखनेकी बात तो यह है कि क्या सभी झूठ, छल आदि करनेवाले, असंयमशील पुरुष धनी और सुखी ही हैं या उनमें दरिद्र, रोगी और दुःखी भी हैं? यदि ऐसे भी लोग हैं कि सब छल, कपट, प्रपञ्च करके भी दर-दर भटकते हैं, कंगाल

एवं दुःखी हैं तो यह कैसे कहा जा सकता है कि पाप तथा असंयमसे धन और सुख मिलता है? सच बात तो यह है कि हमारे मनमें यह प्रश्न प्रारब्ध तथा पुनर्जन्मको न माननेके कारण ही उठता है। मनुष्य अपने प्रारब्धका फल भोगता है और जन्ममें जो कुछ करता है, उसका फल उसे आगे भोगना पड़ता है। एक मजदूरने सप्ताहभर श्रम करके मजदूरी प्राप्त की, दूसरे सप्ताह वह बैठा रहा। अब दूसरे सप्ताहमें वह मजदूर काम-धाम तो करता नहीं, पर अपनी मजदूरीके पैसोंसे मौज उड़ाता है। दूसरा मजदूर अब पूरा श्रम करता है; पर जबतक सप्ताह पूरा न हो, मजदूरी मिलनेसे पहले उसे प्रायः भूखे रहना पड़ता है। जो लोग इन मजदूरोंके पहले सप्ताहका जीवन नहीं जानते, वे ही दूसरे सप्ताहका जीवन देखकर आक्षेप करते हैं कि मजदूरी करनेपर भूखों रहना पड़ता है। इसी प्रकार जो लोग सुख पा रहे हैं, वे अपने पूर्वजन्मके पुण्यका फल भोग रहे हैं। यदि वे इस समय पाप करते हैं तो अपने लिये आगे दुःखके साधन जुटा रहे हैं। वे तो दया करने योग्य हैं। जो कर्तव्यका पालन करते हैं, पूर्वजन्मोंके कर्मदोषसे भले उनको इस समय क्लेश भोगना पड़ता हो, पर

वे ठीक मार्गपर हैं। उनका भविष्य उज्ज्वल है। वे प्रशंसनीय हैं।

मनुष्यका जन्म प्राणीको बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होता है। इस जीवनमें भी सबसे उत्तम अवस्था बाल्यकालकी ही है। इस अवस्थामें जीवनको जैसा बनाया जाय, वह उसी दिशामें चल पड़ता है। इस समयके संस्कार पूरे जीवनको प्रभावित करते हैं। अतः बहुत सोच-समझकर बालकोंको अपना जीवन-पथ चुनना चाहिये। संयम, सदाचारपूर्ण जीवनको ही उन्हें सावधानीसे अपनाना चाहिये। शास्त्रोंपर तथा अपने स्वधर्मपर आस्था रखकर, कुसङ्ग तथा कुतर्कसे बचे रहकर ही वे अपने जीवनको सफल बना सकते हैं।

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य

145 **बालकोंकी बातें**—ईश्वरभक्ति, स्वदेश-प्रेम, व्यवहारकी शिक्षा।

146 **बड़ोंके जीवनसे शिक्षा**—हरिश्चन्द्र, महाराज रघु आदिके चरित्र।

148 **वीर बालक**—अभिमन्यु, भरत, शिवाजी आदिके प्रेरक चरित्र।

149 **गुरु और माता-पिताके भक्त बालक**—१९ आदर्श बालकोंकी कथाएँ।

150 **पिताकी सीख**—रहन-सहन, खान-पान एवं स्वास्थ्यकी जानकारी।

152 **सच्चे और ईमानदार बालक**—बालकोपयोगी २३ कहानियाँ।

155 **दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ**—विभिन्न आदर्श बालक-बालिकाओंके अनुकरणीय प्रेरक प्रसंग।

156 **वीर बालिकाएँ**—१६ बालिकाओंकी प्रेरक कहानियाँ।

213 **बालकोंकी बोल-चाल**—दैनिक व्यवहारकी शिक्षा।

214 **बालकके गुण**—सद्‌गुणोंकी अनुपम शिक्षा।

215 **आओ बच्चों तुम्हें बतायें**—सूरज, धरती, हिमालय आदिके परिचयके साथ पक्षियों एवं वस्तुओंके विषयमें जानकारी।

216 **बालककी दिनचर्या**—आदर्श दिनचर्याके १८ पाठ।

217 **बालकोंकी सीख**—उत्तम संस्कारोंकी सुन्दर सीख।

218 **बाल-अमृत-वचन**—दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य, दया, परोपकार, सत्य-वचन, उत्तम व्यवहारके परिचयके साथ नीतिपरक दोहे।

219 **बालकके आचरण**—सदाचारके विभिन्न पाठ।

396 **आदर्श ऋषि-मुनि**—१६ ऋषि-मुनियोंके प्रेरक चरित्र।

397 **आदर्श देश-भक्त**—३२ देशभक्तोंकी प्रेरक कथाएँ।

398 **आदर्श सम्राट्**—३२ आदर्श राजाओंका जीवन-परिचय।

399 **आदर्श सन्त**—३२ संतोंके परिचय एवं उपदेश।

402 **आदर्श सुधारक**—३२ समाज-सुधारकोंके परिचय एवं उपदेश।

516 **आदर्श चरितावली**—विभिन्न आचार्योंके परिचय एवं उपदेश।

696 **बाल-प्रश्नोत्तरी**—प्रश्नोत्तरके रूपमें धार्मिक शिक्षा।

727 **स्वास्थ्य, सम्मान और सुख**—स्वास्थ्य, सम्मान और सुखकी प्राप्तिके विभिन्न उपयोगी उपाय।

ISBN 81-293-0641-7

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, फैक्स : २३३६९९७

GPPN 696